संस्कृत साहित्य में मानव अधिकार एक समग्र चिन्तन

*डॉ. हंसराज शर्मा

इतिहास पुराण की परम्परा के अनुसार मानव का प्रादुर्भाव एक विलक्षण घटना थी। मानव एक जैविक अभिव्यक्ति के साथ–साथ एक सामाजिक धार्मिक एवं एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति था। जीवन के नए–नए अभ्यासों से परिचय कराने का काम मानव जीवन से ही प्रारम्भ हुआ। मानव ने अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अपने आस–पास एक ताने–बाने को बुनना प्रारम्भ किया। इसके परिणाम स्वरूप, समाज एवं परम्परा जन्म लेने लगी। सामाजिक व्यवस्था व्यक्तिवाद के समूहवाद में परिवर्तित होने लगी। चूंकि मानव को प्रकृति व उसकी शक्तियों के साथ प्रतिदिन संघर्षरत रहना था और अस्तित्व बनाए रखना एक चुनौतीपूर्ण संघर्ष बनता जा रहा था। इसी के फलस्वरूप धीरे–धीरे सामूहिकता ने जन्म लेना प्रारंभ किया।

इस समूहीकरण, सामाजीकरण का ही परिणाम था मानवों के ताने–बाने से बने कानून, अधिकार और दायित्व। यद्यपि प्रत्येक जीव वस्तुतः जीवन के अधिकार के साथ ही उत्पन्न होता है, परन्तु मानव की उत्पत्ति के उपरान्त जैसे–जैसे समय बीतने लगा, मानव अधिकारों की नवीन व्याख्याए, नवीन रूप में अवतरित होने लगीं। इसकी झलक भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से दिखाई देती रही हैं।

भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही स्वयं में विशिष्ट और गरिमापूर्ण है। भारतीय संस्कृत केवल मूल्यों की संस्कृति ही नहीं है, अपितु भारतीय संस्कृति में प्रारम्भ से ही मानव मात्र की गरिमा और मूल्यों की सुरक्षा के विशेष प्रयत्न किए गए हैं।

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो हमारी प्रकृति या स्वभाव में अन्तर्निहित हैं, जिनके बिना मानव अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं कर सकता। इस वैश्विक और सार्वजनीन भावना के तहत, प्राचीन काल से ही संस्कृत वाङ्मय में मानवाधिकारों के अनेक संदर्भ प्राप्त होते हैं।

मानवाधिकार हर मनुष्य को प्राप्त है, चाह वो किसी भी राष्ट्र समाज या साहित्या से सम्बन्धित हो। हर मनुष्य को बिना किसी भेद–भाव क इन अधिकारी को प्राप्त करने का अधिकार है। हर अधिकार परस्पर सम्बन्धित हैं और अपने आप में पूर्ण और मुक्त भी हैं। न्याय, समानता, बन्धुत्व आदि मानवीय मूल्य मानवाधिकार के प्राणस्वरूप हैं, जिनका लौकिक संस्कृत–साहित्य में रामायण, मृच्छकटिकम्, अभिनानशाकुन्टलम, रत्नावली, दशकुमारचरितम्, मेघदृतम् आदि संस्कृत ग्रंथों में उल्लेख किया गया है, य मानवाधिकार प्राचीन काल से ही संस्कृत वाङमय में बीज रूप स विद्यमान है। इसी प्रकार हमारे धार्मिक साहित्य–कुरान, गुरुग्रन्थ साहिब, बाईबल आदि में मानवाधिकारा का विशद् वर्णन प्राप्त होता है।

हर मानव के मूल अधिकार हैं – सर्वत्र सुखी, निरागी, दुरूखविहीन, मानवी मुष्टि की संस्थापना। वर्तमान पारिभाषिक मान्यताओं में, 'मानवाधिकार' शब्द को सार्वभौम घोषणा 1948 में संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा हुई, जिसके अन्तर्गत एसी भावनाओं का प्राकट्य हुआ है कि मानव परिवार के सभी सदस्यों की अन्तनिहित गरिमा, शान्ति, मानवाधिकारों के

आधार हैं। मानव देह गरिमा–महत्त्व, स्त्री–पुरुष समानाधिकारिता, वाकस्वातन्त्र्य, भयमुक्त जीवन यापन सहित उत्कृष्ट जीवन स्तर की प्राप्ति का अधिकार उल्यादि कल्याणी बिन्दुओं के विधि सम्मत संरक्षण पर चिंतन किया गया है। 30 अनुच्छेदा में संयुक्त राष्ट्रसंघ की सार्वभौम घोषणा विश्व के समक्ष प्रस्तुत हुई, जो वेट और उपनिष्ट की विचारणा का रूपान्तरित, अनुवादित, अनुवाक्यांश या अनुवर्तन मात्र है।

ऋग्वेद में मानव के मूलभूत अधिकारों का अद्वितीय वर्णन किया गया है।

कोई मानव उत्कृष्ट या अपकृष्ट नहीं है, सब परस्यर बन्धु हैं, सबका समान अधिकार प्राप्त है। हर मानव को अधिकार है कि वो एक–दूसरे को आगे बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील और सामूहिक रूप से प्रगति के पथ पर अग्रसर हो। चारों वेदों में ऋग्वेद प्रथम वेद है। वेदों में यह प्रमुख रूप से बताया गया है कि पूरे विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों का एकता से जीवन यापन करने का अधिकार प्राप्त है। हर व्यक्ति को संकल्प, हदय और मन से एकरसता का अधिकार है। परम्या सहयोग से रहने के अधिकार का सत्र में दृढ संकल्प हो।

वेद और उपनिषद निरन्तर मानव के मूलभूत अधिकारी की ओर इशारा करते हैं। मानव के इन मूलभूत अधिकाराम एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिकार है– सदा प्रपत्र रहने का अधिकार देतरीय उपनिषद में इसका इस प्रकार उल्लेख है।

सब प्रसन्न हों
सब रोगों से मुक्त हों
सब शुभ वस्तुएँ देखें
कोई शोक न सहे।
भगवान् हम सबकी एक साथ रक्षा करें
भगवान् हम सबका एक–साथ लालन पालन करें
हमारा अध्ययन ओजस्वी प्रभावशाली हो
हम एक–दूसरे से घृणा न करें
हर तरफ शांति हो।

प्रसन्न रहने के अधिकार के साथ–साथ, अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि सब मनुष्यों को समानता का अधिकार है, हर मनुष्य समान है।

हर मनुष्य को भोजन और जल पाने का अधिकार है। जीवन के रथ का जुआ सबके कन्धों पर बराबर रूप से है। सबको इस प्रकार एक दूसरे के साथ सांमजस्य से रहना चाहिए, जिस प्रकार रथ का पहिया और किनारा एक दूसरे से जुड़े हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में भी मानव अधिकारों का उल्लेख किया है, जिसमें यह बताया गया है कि हर मानव को कर्म करने का अधिकार है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते है

तुम्हें अपने कर्म (कर्त्तव्य) करने का अधिकार है, किन्तु कर्म के फल के तुम अधिकारी नहीं हो। तुम न तो कभी अपने आपको अपने कर्मों के फलों का कारण मानो, न ही कर्म न करने में कभी आसक्त होओ।

मानवाधिकारों के अन्तर्गत ही स्वास्थ्य का अधिकार भी सम्मिलित है। ऋग्वेद और यजर्वेद में स्वास्थ्य के मानवाधिकार की बात कई स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है। इनमें पशुओं तक के स्वास्थ्य की कामना की गई है।

इमा रूद्राय तवसे कपर्दिने, क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः।

यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे, विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्नातुरम्।।

अर्थात् हम बलवान, जटाधारी, वीरों के शासक, रूद्र के लिए ये स्तुतियाँ अर्पित करते हैं जिससे हमारे मनुष्यों और पशुओं के लिए सुख हो, इस ग्राम में सभी हष्ट–पुष्ट और निरोग हों।

शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने के साथ–साथ मनुष्य के लिए आध्यात्मिक रूप से उन्नत होना भी अति आवश्यक है। इसके लिए वैदिक युग से स्वास्थ्य के अधिकार के साथ–साथ मनुष्य को यज्ञ करने का अधिकार भी प्राप्त है। वैदिक काल में यज्ञ प्रधान संस्कृति थी। भारतीय जन–जीवन यज्ञीय भावनाओं में ओत–प्रोत रहा है। यही कारण है कि परवर्ती पुराणकाल में ''सर्व यज्ञमयं जगत'' कहकर यज्ञ की व्यापकता को स्वीकार किया गया है। फलतः यजन, पूजन, उपासना, कथा श्रवण, तीर्थयात्रा, अध्यापन तथा विवाह आदि नैमित्तिक एवं राज्य प्राप्ति आदि काम्यकर्म भी आगे चलकर यज्ञ की श्रेणी में गिने जाने लगे।

वैदिक काल में नारी नर के साथ स्वतन्त्र रूप से यज्ञ करने की पूर्ण अधिकारिणी थी। इस सम्बन्ध में अथर्वसंहिता में कहा गया है–''मैं शुद्ध, पवित्र यज्ञ की अधिकारिणी, इन स्त्रियों को विद्वानों के हाथों मे पृथक–पृथक् रूप से प्रसन्नता से अर्पित करता हूँ।''

आध्यात्मिक उन्नति के साथ–साथ वैदिक काल में स्त्रियों को यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त था, जिसके फलस्वरूप वे अपना सर्वागीण विकास करने में सक्षम थी। इसी कारण समाज में उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था, जिससे उन्हें सम्मानीय अधिकार भी प्राप्त थे। फलतः वैदिक काल में स्त्रियों को अत्यन्त ही महत्वपूर्ण व गौरवशाली स्थान प्राप्त था। स्त्री को नित्य नवीना, यौवनसम्पना, शुभवसना, सत्यभाषिणी आदि विशेषणों से सम्बोधित कर उसके कन्या, भगिनी, पत्नी, मात आदि रूपों के प्रति आदर व्यक्त किया गया है। पत्नी राहत को जंगल मानकर गृणिी को गृह की संज्ञा दी गयी।

धार्मिक कार्यों में भी स्त्री सहधर्मिणी होती थी। उसके बिना कोई भी धार्मिक कत्य पर्ण रूप से सफल नहीं माना जाता था। क्योंकि शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि, 'अपत्नीक पति को यज्ञ का अधिकार नहीं था।

स्त्री को घर में सम्मानजनक पद प्राप्त था, मनु ने तो यहां तक कहा है कि जहाँ पर नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।'

अथर्ववेद संहिता में नारी के गौरव की पुष्टि करते हुए कहा गया है कि – जिस प्रकार शक्तिशाली सागर नदियों पर शासन करता है, वैसे ही तुम अपने पति के घर पहुँचकर महारानी बनो। तुम सास–श्वसुर, देवर, ननद में साम्राज्ञी बनकर रहो।'

अतः स्त्री को साम्राज्ञी एवं महिषी आदि सम्मानजनक शब्दों से पुकारा गया है। नारी को और अधिक सशक्त बनाने के लिए उसे सम्पत्ति से सम्बन्धित कई अधिकार भी प्राप्त थे। वैदिक युग में पत्नी की स्थिति बहुत उन्नत थी, ऋग्वेद के मतानुसार, 'पत्नी ही घर है।' पत्नी गृहस्थाश्रम का मूल होने से उसे घर की आत्मा और प्राण समझा जाता था। अतरू वैदिक युग के प्रारम्भ में स्त्रियों को कुछ साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त थे।

तैत्तिरीय संहिता में पत्नी को पारिणाह्य अर्थात् घर की वस्तुओं की स्वामिनी कहा गया है। किन्तु ऐसा धन, जिस पर केवल पत्नी का ही अधिकार होता है और उसके बाद उस धन की उत्तराधिकारिणी उसकी पुत्री होती है, उसे

स्त्रीधन कहा जाता है, जो विवाह के समय कन्या के माता–पिता तथा वर पक्ष की ओर से धन दिया जाता है, अर्थात् वस्त्र–आभूषण आदि जो स्त्री को विवाह के समय दिए जाते हैं, वह स्त्री धन कहलाता है। स्त्री जाति को सम्पत्ति सम्बन्धी जो अधिकार दिये जाते थे, वह विवाह के समय दिये जाने वाले दहेज रूपी चल अथवा अचल सम्पत्ति थी। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि पति–पत्नी में किसी भी प्रकार का साम्पतिक विभाजन नहीं होता। दो। का सम्पत्ति पर बराबर का स्वामित्व होता है।

समाज में प्राचीन काल से नारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, किन्तु जो संचालन के लिए राजा की भूमिका सर्वोपरि है। वैदिक काल में राजा को सकस। माना गया है, इसलिए हर राजा को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त है। राज्य राजा प्रमुख रूप से विभिन्न अधिकारों से युक्त होता है, यथा– प्रजा रंजन, सुव्यवस्था, रक्षा शांति प्रबन्ध, सामाजिक कार्य कर ग्रहण, अपने कार्यो को निष्ठापूर्वक वहन करना, दादनीति का ज्ञान व उचित पालन, श्रेष्ठ व उचित लोगों को महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करना, कोष की सुरक्षा व सम्वर्धन इत्यादि।

महाकवि अश्वघोषानुसार

भारैरशीशमच्छत्रून गुणैर्बन्धूनरीरमत्।
रन्धैनांयूयुदद् भृत्यान् करैर्नापीपिडत् प्रजाः॥

शत्र मध्यस्थ और मित्र का निर्धारण करना राजा का अधिकार है यथा –

मध्यस्थता तस्य.....पक्षावपरस्तु नास।

जो राजा धर्म से प्रजा की रक्षा करता है और वध करने वाले लोगों को मारता है, वह प्रतिदिन एक लाख गायों की दक्षिणा वाले यज्ञ के समान फल को प्राप्त करता

इसी प्रकार जो मनुष्य पढ़ता है, यज्ञ करता है, दान देता है और देवताओं का पूजन करता है उन सबमें से प्रजा की रक्षा के कारण राजा छठे हिस्से का भागी होता है।

समाज में राजा अपने अधिकारों का पूर्ण उपयोग करते हुए प्रजा के हित के लिए कार्यरत रहते हैं, तो घर में परिवारजन जैसे पिता, पुत्र जो घर के संचालक माने जाते हैं, इन्हें भी कई अधिकार प्राप्त हैं। पिता का पुत्र पर पूर्ण अधिकार था। पिता की आज्ञा का पालन पुत्र का परम कर्तव्य था। सम्पत्ति के विघटन का नियम नहीं था। सभी की अर्जित सम्पत्ति पर पिता का अधिकार था। स्त्रियों को सम्पत्ति रखने का कोई अधिकार नहीं था। दूसरी ओर कुछ अपवाद भी हैं। यथा ऋग्वेद में पिता की वृद्धावस्था में विद्यमान रहने पर भी पुत्रों ने सारी सम्पत्ति का बटवारा करा लिया। बालक यदि छोटा है, अन्य भाई बड़े हैं तो ऐसी स्थिति में सम्पत्ति प्राप्त करने में यह बालक भी अधिकारी होता था। उसके बालिग होने तक भाता, पितामह, मातामह आदि द्वारा सुरक्षा की जाती थी। बालिग होने पर उसे उसकी सम्पत्ति प्राप्त करने का पूरा अधिकार था। यदि पत्र नपंसक है, अधर्मी है, चरित्रहीन है तो उसे पैतृक सम्पत्ति से वंचित रखने का माता पिता का पूरा अधिकार प्राप्त था।

आचार्य मन तथा याज्ञवल्क्य ने भी सम्पत्ति में कन्याओं को भाईयों के भाग का चौथा हिस्सा देने की व्यवस्था की है। ऋग्वेद में कहा गया है–अभ्रातृका विवाहिता होने पर भी धन प्राप्त करने के लिए पितृकुल की ओर आती है। महाभारत में कुमारी कन्या के साम्पत्तिक अधिकारों में बराबर की भागीदारी का समर्थन किया गया है। सृष्टि के आरम्भ में स्वयम्भू के पुत्र मनु ने कहा था कि दोनों प्रकार की सन्तानों का बिना किसी भेद के धमांनुसार दाय का अधिकार होता है।

समाज में विवाह एक ऐसा गठबन्धन है जो समाज के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यधिक आवश्यक है। इसलिए पिता–पुत्र के अधिकारों के साथ–साथ समाज में हर नर–नारी को विवाह करने का अधिकार भी प्राप्त है। विवाह प्रथा देवताओं से (शिव पार्वती विवाह) लेकर सर्वसाधारण मनुष्य के जीवन में एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। वैदिक काल से ही विवाह को एक पवित्र संस्कार माना जाता रहा है। विवाह की आधारशिला सत्य एवं सतित्व पर प्रतिष्ठित थी। इस वैवाहिक आधार शिला को सुदृढ़ करने हेतु वाग्दान, कन्यादान, अग्निसाख्य पाणिग्रहण, अग्नि प्रदक्षिणा, लाजाहोम एवं सप्तपदी आदि प्रमुख क्रियाएं सम्पन्न की जाती थीं। विवाह प्राय रू ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति पर ही बालक–बालिकाओं का होता था।

ऋग्वेद संहिता में स्पष्ट कहा गया है कि विवाह संस्कार सत्य और कर्त्तव्य पर प्रतिष्ठित था। विवाह दम्पत्ति के आत्मा, मन, प्राण, शरीर को आध्यत्मिक सम्बन्ध द्वारा सुदृढ़ करने का एक चिरस्थायी प्रयत्न था।

महाकाव्यकाल में कन्या को वर–चयन कर, विवाह करने का पूरा अधिकार था, वह जिसे चाहती थी उसे वरण कर सकती थी किन्तु वह अपने योग्य वर का वरण करती थी, जो उसके कुल की मर्यादा के अनुरूप होता था। अतः कन्या का पिता वर चयन हेतु वर समारोह का आयोजन करता था, जिसे स्वयंवर का नाम दिया गया। रामायण में सीता स्वयंवर महाभारत में कुन्ती स्वयंवर द्रौपदी स्वयंवर आदि।

संस्कृत साहित्य में मानव को कई रूपों में अधिकार प्राप्त है। संस्कृत वाङमय में सम्पूर्ण सृष्टि के समग्र विषय बीज रूप में, पुष्पित, पल्लवित पुष्प रूप में सर्वदा बिखरे हुए हैं। ज्ञान, दर्शन, जीवन, कला व्यवहार, राजनीति, इतिहास, भूगोल, चिकित्सा आदि समन्वित रूप में एक दूसरे से जुड़े विषय हैं। 'अधिकार' शब्द अत्यन्त व्यापक कलवर लिए हुए है। घर परिवार, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीय आदि सभी स्तर पर कुछ–न–कुछ अधिकारों की चर्चा हम नित्य प्रति करते हैं। संस्कृत संसार की प्राचीन भाषा में भी अनेको अधिकारों की विस्तृत व्याख्या, हमें अनेकों ग्रंथों में अलग–अलग प्रकार से विभिन्न संदों में दृष्टिगोचर होती है।

अतः संस्कृत साहित्य में मानव अधिकारों का उल्लेख इस बात का द्योतक है कि भारतीय संस्कृति में मानवाधिकार सदैव बीजरूपेण विद्यमान रहे हैं। तथा मानवाधिकार सवदा मूलरूप से मानव के सवांगीण विकास में सदा ही एक अहम् भूमिका निभाते रहे है।

***व्याख्याता**
ज्योतिष शास्त्र
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय
नीम का थाना (सीकर) राजस्थान

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अज्यस्थासा अकनिस्थामा यल

   सम मात्रा वावरुद्धयुरू सौभाग्यरू।। (ऋग्वट मंडल–मुक्त–60. मंत्र–5)

2. समानी वा आकृतिति समाना हृदयानिवाह।

   समानमस्तु व मानो यथा वह समहासति ।। (ऋग्वेद मंडल–10 सूक्त––191, मंत्र–4)

3. सर्वेपि सुखिनः सन्तु

सर्वे सन्तु निरामयाः सर्वे भद्राणि पश्यन्तु

मा कश्चिद् दुरूखभाग् भवेत। (तैत्तरीय उपनिषद् में शिक्षावली में प्रार्थना)

4. ओम् सह नाववतु सह नो भुनक्तु सहवीर्य करवावहै, तेजस्वीनावधीतमस्तु, मा विदिशामहे , ओम् शान्तिः शान्तिः शान्ति।। (तैत्तरीय उपनिषद् में शिक्षावली में प्रार्थना)

5. समानी पापा सह नृन्न भागः

समान योवत्रे सह वो युनज्मि

आराः नाभिमिनाभिताः। (अर्धवेद–समजान सूक्त)

6. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेत मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। (भगवद्गीता 2.47)

7. कालिका पुराण – 31/10

8. शुद्धाः पूता यापिता यज्ञिया इमा ब्रहाणा हरतेष प्रधान सादयामि।

9. जायापत्योर्नविभागो विद्यते।। –2/6/14/20

10. सौन्दरानन्दः 2/27

11. बुद्धचरितम् 2/6

12. मनुस्मृतिः 8/306

13. मनुस्मृतिः 8/305